

ग्रेटर बॉम्बे के लिए नगर निगम

बनाम

बॉम्बे के लाला पंचम और अन्य

01/10/1964

[गर्जेन्द्रगढ़कर, पी.बी. (सीजे) वांचू, के.एन एम हिदायतुल्ला, रघुबर दयाल,

जे.आर. मुधोलकर,]

उद्धरण: 1965 एआईआर 1008, 1965 एससीआर (1) 542 उद्धरणकर्ता

जानकारी: अधिनियम 1974 एससी2069 (5)

अधिनियम बृहद बोम्बो नगर निगम ने, बृहद बोम्बो नगर निगम अधिनियम की धारा 354 आर के तहत एक प्रस्ताव एक निश्चित क्षेत्र को निकासी क्षेत्र घोषित करते हुए प्रकाशित किया । इस प्रस्ताव से प्रभावित व्यक्तियों को समय सीमा समाप्ति से पूर्व आपत्तियाँ दर्ज करवानी थीं । नगर निगम ने मंजूरी आदेश अंतर्गत धारा 354 आरए के तहत राज्य सरकार को मंजूरी के लिए प्रस्तुत किया । प्रस्ताव मंजूरी के पश्चात एक इकरारनामा निगम और भवन स्वामियों/ मकान मालिकों के मध्य निर्गम क्षेत्र को निश्चित भवनों को विध्वंस करने के लिए किया गया । उन भवनों के किराएदारों ने एक वादपत्र शहरी दीवानी न्यायालय में नगर निगम और

भूस्वामियों/मकान मालिकों के विरुद्ध वाद कारक यह रखते हुए कि (i) धाराएँ 354 आर व 354 आरए अधिकार क्षेत्र से बाहर थीं, क्यूं कि वे किरायेदारों को ऐसा अवसर प्रदान नहीं करती थीं जिससे कि किराएदार यह दर्शा सकें कि इमारत/भवन व उससे लगी जमीन किं विध्वंस की आवश्यकता नहीं है ।(ii) प्रतिवादियों की कार्यवाही बदनीयतीपूर्वक थी, क्योंकि यह असंवैधानिक प्रावधानों के तहत की गई थी तथा उनको इस प्रस्तावित कार्यवाही का विरोध करने का अवसर भी नहीं दिया गया था। वादपत्र इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अपीलार्थी के पास शहरी दीवानी न्यायालय के द्वारा पारित निकासी आदेश के विरुद्ध अपील अंतर्गत अनुसूची जीजी., खण्ड(2) दायर करने का अधिकार था । (iii) इस अधिनियम के तहत उच्च न्यायालय के द्वारा अपील खारिज की गई परंतु लेट्स पेटेन्ट अपील के तहत अपील में उच्च न्यायालय द्वारा वादी को संशोधित वादपत्र पेश करने की अनुमति प्रदान करते हुए प्रकरण अन्वीक्षण न्यायालय में प्रेषित किया। संशोधित वादपत्र में याचिकाकर्ता/वादी ने अपने वादपत्र के आधार को यह कहते हुए बदल दिया कि भूस्वामियों ने नगर निगम को अनुचितरूप से फर्जकारीपूर्वक से उपरोक्त आदेश प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया था । न्यायालय ने कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को व

अतिरिक्त साक्ष्यों को परीक्षित कराने के निर्देश भी दिए थे । जिस पर निगम ने उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की ।

**अभिनिर्धारित:** (i) किरायेदारों का पट्टान्तरित परिसर में हित संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (एफ) के तहत है सम्पत्ति है, तथापि अधिनियम 354RA और अनुच्छेद जीजी उन्हें किसी मंजूरी/ मंजूरी आदेश पर आपत्ति करने या प्रतिरोध करने का अवसर देती है, किरायेदारों द्वारा संपत्ति रखने के अधिकार पर प्रतिबंध जो कि, धाराएं 354R और 354RA में हैं अनुचित नहीं हैं और प्रावधान वैध हैं।

(ii) उपरोक्त अवलोकन से धारार्ये वैध है, आगे यह मानना चाहिये कि वादी के लिये अनुसूची जीजी, खण्ड(2) के तहत अपील करने का अधिकार खुला है है जो कि न्यायाधीश, शहरी दीवानी न्यायालय, में अपील की जा सकती थी क्योंकि उक्त खण्ड के अनुसार किरायेदार "व्यथित व्यक्ति" थे। सरकार द्वारा इसकी पुष्टि और इसके प्रकाशन के बाद निकासी आदेश/निकासी आदेश को अंतिम रूप दिया जाता है जो कि अपील के परिणाम के अधीन होगा, अगर ऐसी कोई अपील नहीं थी अथवा

यदि ऐसी कोई अपील दायर की गई थी और खारिज कर दी गई थी तो उन किरायेदारों को जो निकासी आदेश से व्यथित थे, के लिए वाद द्वारा कोई उपचार उपलब्ध नहीं था।

(iii) उच्च न्यायालय ने वादपत्र में संशोधन की अनुमति देने और मुकदमें को वस्तुतः पुनः सुनवायी के लिये प्रेषित करने में त्रुटि की थी।

वादीगण, संशोधन के द्वारा, धोखाधड़ी का एक नया मुकदमा बना रहे थे जिसके लिये वादपत्र में कोई भी आधार नहीं था। इसके अतिरिक्त आदेश XLI नियम 27 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत प्राप्त शक्तियाँ केवल साक्ष्य में कमी को दूर करने के लिए थीं न कि उच्च न्यायालय द्वारा नवीन साक्षियों की साक्ष्य अपील के स्तर पर पेश करने के लिए ही, जहां ऐसे सबूत के बिना भी निर्णय हो सकता है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय को निदिष्ट व्यक्तियों से पूछताछ करने के निर्देश नहीं देने चाहिए थे क्योंकि किसी विशेष गवाह से पूछताछ करने के लिये किसी पक्ष को बाध्य करना क्षमता से परे था।

:निर्णय:

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1964 की सिविल अपील संख्या 134/1964,

एलपी अपील संख्या 85/1961 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के 28 सितंबर, 1962 के निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील।

एमसी सीतलवाड और जेबी दादाचंजी, अपीलकर्ता की ओर से

एस. वी. गुप्ते, अतिरिक्त सॉलिसिटर-जनरल,

जी.ए पांड्या और एम.1. खोवाजा, प्रत्यर्थी संख्या 7, 8 और 9 की ओर से

एल.एन. श्रॉफ, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से

श्री मुधोलकर जे. द्वारा निर्णय पारित किया गया था। बंबई उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील में निर्णय के लिए जो प्रश्न आता है वह यह है कि क्या शहरी दीवानी न्यायालय, बंबई में वादी द्वारा दायर किया गया मुकदमा कायम रखने योग्य था। वादी कुछ किरायेदार हैं जो लाला निगम रोड, कोलाबा, बॉम्बे पर स्थित धोबी चॉल (और इसे कोलाबा लैंड मिल चॉल के नाम से भी जाना जाता है) के नाम से जाने जाने वाली इमारतों के समूह में अलग-अलग कमरों में रहते हैं- बड़ी संख्या में अन्य किरायेदार भी हैं इन चॉलों में निवास करते हैं या व्यवसाय करते हैं और वादी ने सभी किरायेदारों की ओर से प्रतिनिधि की हैसियत से मुकदमा दायर किया। मुकदमे का पहला प्रतिवादी ग्रेटर बॉम्बे नगर निगम है और शेष प्रतिवादी 2 से 4 वादीगण के जमीन के मालिक हैं।

इमारतें और जमीन जिस पर वे खड़ी हैं, कोलाबा लैंड मिल कंपनी लिमिटेड, बॉम्बे की हैं। 16 मई, 1956 के एक समझौते के तहत, जिसे विध्वंस समझौता कहा जाता है, प्रतिवादी 2 से 4 ने किराया नियंत्रक,

बॉम्बे की अनुमति लेने के बाद उन इमारतों को जो जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है, को ध्वस्त करने के लिए एक निश्चित पारितोषिक पर करार किया, जो कि क्लॉज 7 के तहत प्रतिवादिगण 2 से 4 को कंपनी की अनुमति और लाइसेंस के साथ उन इमारतों और भूमि का कब्जा दिया जाना था, जिस पर वे खड़े हैं और इमारतों के विध्वंस तक कंपनी को 20,221-8-0 प्रति वर्ष रुपये का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे। और उसके बाद उन्हें कंपनी की इच्छा के अनुसार किरायेदार के रूप में भूमि पर कब्जा रखना था। इमारतों के विध्वंस तक, प्रतिवादी 2 से 4 इमारतों पर कब्जा करने वाले किरायेदारों द्वारा देय किराए के हकदार थे और इमारतों के संबंध में मासिक कर, बीमा प्रीमियम और देय अन्य देय राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे। इमारतों के विध्वंस के बाद प्रतिवादी 2 से 4 सभी सामग्री और मलबे के हकदार थे लेकिन कंपनी को इसकी कीमत 40,000 रु/- उन्हें रुपये का भुगतान करना था। इस राशि में से इन प्रतिवादियों को भुगतान करना था और वास्तव में समझौते के समय 10,000 रु/-रुपये का भुगतान कर दिया था।

वादी का तर्क है कि इमारतें कई वर्षों से जर्जर हालत में थीं और अगस्त 1951 से मई 1956 के बीच इमारतों की मरम्मत के लिए कंपनी को 138 नोटिस दिए गए थे, लेकिन उन्होंने इस पर कोई कार्रवाई नहीं की।

वादी का आगे कहना है कि नवंबर 1956 से 29 जनवरी 1960 के बीच प्रतिवादी 2 से 4 को इसी उद्देश्य के लिए ग्यारह नोटिस दिए गए थे, लेकिन उन नोटिसों पर उनके द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसके अलावा कंपनी और प्रतिवादी 2 से 4 पर नोटिस का अनुपालन नहीं करने के लिए 71 बार मुकदमा चलाया गया लेकिन ये मुकदमा भी अप्रभावी साबित हुआ। उनका तर्क यह है कि कंपनी और प्रतिवादी 2 से 4 ने जानबूझकर मरम्मत करने से परहेज किया क्योंकि वे इमारतों को ध्वस्त करना चाहते थे और इस उद्देश्य की प्राप्ति को सुविधाजनक बनाने के लिए उन्होंने निगम द्वारा जारी किए गए विभिन्न नोटिस और इसके द्वारा शुरू किए गए अभियोजन को आमंत्रित किया।

वादी स्वीकार करते हैं कि निगम ने, बोम्बो नगर निगम अधिनियम, 1888 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 354आर द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उस क्षेत्र को निकासी क्षेत्र घोषित किया है जिसमें इमारतें खड़ी हैं और उस अधिनियम की धारा 354आरए के अंतर्गत एक निकासी आदेश दिया जिसकी राज्य सरकार द्वारा विधिवत पुष्टि की गई है। हालाँकि, उनके अनुसार, ये प्रावधान संविधान की धारा 19 (1) (एफ) और (जी) के तहत अधिकारातीत हैं। इसके अलावा, उनके अनुसार पहले प्रतिवादी ने अधिनियम के प्रावधानों का दुरुपयोग किया है और उसके

द्वारा की गई कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण है। हालाँकि, वाद में दुर्भावना पर कोई विवरण नहीं दिया गया है। प्रतिवादियों ने इस बात से इनकार किया कि उपरोक्त प्रावधान अधिकारातीत हैं और इस बात से भी इनकार किया कि आदेश दुर्भावनापूर्ण तरीके से बनाया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि वर्तमान मुकदमा अधिनियम की उपधारा (2) की अनुसूची जीजी के प्रावधानों के अनुसार भी समय से वर्जित था।

ट्रायल कोर्ट ने मुख्य रूप से इस आधार पर मुकदमा खारिज कर दिया कि यह लड़ने योग्य नहीं है। वादी द्वारा उच्च न्यायालय में एक अपील की गई, जिसे 25 अगस्त, 1961 को दातार जे. द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया। उसी दिन वादी ने लेटर्स पेटेंट के तहत एक अपील दायर की, जो पटेल और पालेकर जे.जे की खंडपीठ के समक्ष पेशी की गई। विद्वान न्यायाधीशों ने प्रतिवादियों की आपत्तियों को खारिज करते हुए वादी पक्ष को वाद में संशोधन करने की अनुमति दे दी। विद्वान न्यायाधीशों ने अपने फैसले में कहा कि मुकदमा वर्जित नहीं है। फिर वे दुर्भावना के प्रश्न पर विचार करने के लिए आगे बढ़े। उनके अनुसार वादी पक्ष ने दुर्भावनापूर्ण होने का दावा किया था लेकिन उन्होंने विवरण नहीं दिया था। उन्होंने यह भी देखा कि यह सच है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष वादी पक्ष द्वारा कोई सबूत पेश नहीं किया गया था और आम तौर पर वे



उस स्तर पर नए सबूत पेश करने के हकदार नहीं थे तथा लेटर्स पेटेंट के तहत अपील के चरण में तो और भी कम हकदार थे। उनके अनुसार, हालांकि, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर मामले का निपटारा करना संभव नहीं है, रिकॉर्ड पर कुछ दस्तावेज हैं, जो अस्पष्ट हैं, तथा "बड़े पैमाने पर वादी के तर्क का समर्थन करते हैं कि प्रतिवादी 2, 3 और 4 ने धोखाधड़ी से एक आदेश प्राप्त किया और वह आदेश दुर्भावनापूर्ण था।" इनमें से कुछ दस्तावेजों का उल्लेख करने के बाद उन्होंने कहा: "हालांकि दुर्भावनापूर्ण या उनके साथ की गई धोखाधड़ी के सवाल पर कोई सबूत नहीं दिया गया है, लेकिन प्रथम दृष्टया यह इस तरह के निष्कर्ष की ओर ले जाता है, और बिना अतिरिक्त साक्ष्य लिए उक्त प्रश्न पर निर्णय लेना उचित नहीं होगा " । इस अवलोकन के बाद एक और अवलोकन आया, जो हमें लगता है, बहुत ही असामान्य है। यह इस प्रकार है: "हम विशेष रूप से चाहते हैं कि आयुक्त और सिटी इंजीनियर और प्रतिवादियों से इस प्रश्न पर पूछताछ की जाए।" अंततः, विद्वान न्यायाधीशों ने अतिरिक्त साक्ष्य दर्ज करने के लिए मामले को शहरी दीवानी न्यायालय में भेज दिया और उस न्यायालय को नवंबर, 1962 के अंत तक साक्ष्य और उसके निष्कर्षों को प्रमाणित करने का निर्देश दिया। अपीलकर्ताओं को विशेष अनुमति देने के बाद शहरी दीवानी न्यायालय की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है ।

हमें पहले स्वयं इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा वादपत्र में संशोधन की अनुमति देना उचित था। उस संशोधन के द्वारा वादीगण ने वादपत्र में अनुच्छेद 8, जोड़ दिया है। वहां उन्होंने वादी और निगम के अधिकारियों के बीच और मकान मालिकों और निगम के बीच हुए पत्राचार को संक्षेप में प्रस्तुत करने का इच्छा की है। फिर उन्होंने कहा है कि

"परिसर में वादी का कहना है कि प्रतिवादी 2, 3 और 4 ने धोखाधड़ी और गलत तरीके से प्रथम प्रतिवादी को उक्त आदेश देने के लिए प्रेरित किया है। वैकल्पिक रूप से और किसी भी घटना में वादी का कहना है कि प्रतिवादी 2, 3 और 4 ने साइट पर बनाए जाने वाले नए भवनों में सभी किरायेदारों को आवास प्रदान करने की अपनी जिम्मेदारी का उपहास किया है, वादी यह प्रस्तुत करेंगे कि उक्त आदेश और उसके बाद की पुष्टि के लिए सुधार समिति की मंजूरी नगर निगम और सरकार द्वारा तथ्य की गलती के तहत और उन परिस्थितियों में दिया गया था जो धारा 354आर और कानून के प्रावधानों द्वारा उचित नहीं थे। इन परिस्थितियों में वादी का कथन है कि धारा 354आर के तहत प्रथम प्रतिवादी द्वारा पारित उक्त आदेश पूरी तरह से उक्त धारा की, उपेक्षा करते हुए और सख्त प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया। वादी का कथन है कि प्रथम

प्रतिवादी उक्त आदेश देने से पहले कोई भी उपाय करने में विफल रहा और उपेक्षा की, अन्यथा योजना की व्यवस्था करके यह सुनिश्चित किया जाए कि किरायेदारों को कम से कम कठिनाई का सामना कराना पड़े । वादी तदनुसार कथन करते हैं कि उक्त आदेश अवैध, अमान्य और शून्य हैं।"

मूल रूप से दायर वाद में, पैराग्राफ 9 में उन्होंने दुर्भावना के प्रश्न पर निम्नलिखित कथन किया है:

"वादी का कथन है कि जो कार्रवाई करने की मांग की गई है वह बॉम्बे नगर निगम अधिनियम के प्रावधानों का स्पष्ट दुरुपयोग है और इस तरह उक्त अधिनियम द्वारा प्रतिवादी नंबर 1 को प्रदत्त शक्तियों का उल्लंघन है। इसलिए, वादी का कथन है कि प्रतिवादी नंबर 1 का कृत्य दुर्भावनापूर्ण है । "

पहले पैराग्राफ में वादी ने उक्त धाराएँ 354आर और 354आरए की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी है कि वे निगम और उसके अधिकारियों को अनियंत्रित और अनियंत्रित कार्यकारी विवेक प्रदान करते हैं और इस आधार पर भी कि वे संविधान के अनुच्छेद की धारा [19\(1\)](#) (एफ) और (जी) के तहत वादी के अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। उन्होंने यह नहीं बताया कि निगम द्वारा निकासी आदेश बनाना अधिनियम के प्रावधानों का दुरुपयोग क्यों था। इसमें कोई संदेह नहीं है, आगे पैराग्राफ 9

में वे कहते हैं कि निगम वादी को सुनवाई देने में विफल रहा और अगर उन्हें मौका दिया जाता तो वे निगम को संतुष्ट कर देते कि विचाराधीन परिसर को गिराने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यह सच है कि वादी ने निगम की कार्रवाई को दुर्भावनापूर्ण बताया है, जिन आधारों पर कार्रवाई को दुर्भावनापूर्ण बताया गया है, वे दृष्टिगत होते हैं धारा 354आर और 354 आरए की प्रावधानों के असंवैधानिकता (बी) वादीगण को अपने अधिकारियों को संतुष्ट करने का अवसर देने में निगम की विफलता कि परिसर को ध्वस्त करने की आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में उनके द्वारा किए गए संशोधन से उन्होंने यह कहकर अपना रुख बदल लिया है कि मकान मालिकों ने धोखे से और गलत तरीके से निगम को आदेश देने के लिए प्रेरित किया है और वैकल्पिक रूप से दलील दी है कि चूंकि मकान मालिकों ने आवास प्रदान करने की अपनी जिम्मेदारी से इनकार कर दिया है, साइट पर बनाए जाने वाले नए भवन के सभी किरायेदारों के लिए, निगम द्वारा निकासी आदेश ठीक से नहीं दिया जा सका।

श्री सीतलवाड द्वारा हमारे सामने यह आग्रह किया गया था कि संशोधन में एक बिल्कुल नया मामला बनाया गया है और वादी ने न्यायालय के सुझाव पर ऐसा किया है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने

उच्च न्यायालय के समक्ष श्री एसवी गुप्ते की आपत्ति का भी उल्लेख किया कि वादी पक्ष ने वाद में संशोधन के लिए कोई आवेदन नहीं किया है। उन्होंने फैसले में एक संदर्भ पर विश्वास करते हुए आगे कहा कि वादी द्वारा प्रस्तावित संशोधन को न्यायालय द्वारा पर्याप्त नहीं पाया गया और यह न्यायालय के कहने पर था कि वादी ने संशोधन का प्रस्ताव रखा, जिसे अब वास्तव में जगह मिल गई है। जो वादपत्र का पैरा संख्या 8 ए है । श्री सीतलवाड जो कथन करते हैं उसके लिए अच्छा आधार प्रतीत होता है, लेकिन केवल इसलिए कि अदालत के सुझाव पर वादी द्वारा एक संशोधन की मांग की गई थी, हमारे लिए इसे अस्वीकार करना उचित नहीं होगा जब तक कि यह मानने के लिए आधार न हो कि यह किसी अनिच्छुक पक्षकार पर थोपा गया था हालाँकि, यह सुझाव नहीं है। क्योंकि, न्याय करने की इच्छा रखने वाली अदालत पक्षकारों का ध्यान दलीलों में खामियों की ओर आकर्षित कर सकती है ताकि उन्हें दूर किया जा सके और पक्षों के बीच वास्तविक मुद्दे पर विचार किया जा सके। हालाँकि, एक और आधार और मजबूत आधार है जो हमें यह मानने के लिए प्रेरित करता है कि संशोधन की अनुमति कभी नहीं दी जानी चाहिए। वह आधार यह है कि वादी अब धोखाधड़ी का मामला बना रहे हैं जिसके लिए वाद में थोड़ा सा भी आधार नहीं है जैसा कि वाद मूल रूप से था। वाद में केवल

दुर्भावनापूर्ण शब्द का प्रयोग संशोधन की अनुमति देने का कोई आधार नहीं हो सकता। जिस संदर्भ में वाद में दुर्भावनापूर्ण शब्द का उपयोग किया गया है, वह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वादी का मतलब यह था कि निगम का आदेश मनमानी शक्तियों के प्रयोग में किया गया था और परिणामों में संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और (जी) के तहत वादी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा था। **अधिनियम के प्रावधानों का दुरुपयोग है और इस प्रकार इसे दुर्भावनापूर्ण बनाया गया है।**

उच्च न्यायालय कानून की इस आवश्यकता के प्रति पूरी तरह सजग था कि पक्षकार को दलील में संशोधन के माध्यम से एक नया मामला बनाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस मामले से निपटते हुए उच्च न्यायालय ने कहा:

"यह हमें उस रास्ते पर लाता है जिसे हमें वर्तमान मामले और संशोधन आवेदन में अपनाना चाहिए। वाद में, वादी ने आरोप लगाया कि आदेश दुर्भावनापूर्ण था और इसे संपार्श्विक उद्देश्यों के लिए प्राप्त किया गया था।"

विद्वान न्यायाधीश इस मत में सही नहीं थे कि यह वाद में वादी का मामला था कि मकान मालिकों ने निकासी आदेश प्राप्त कर लिया था या निगम ने संपार्श्विक उद्देश्य के लिए वह आदेश दिया था। उच्च न्यायालय

की यह धारणा उस विचित्र प्रक्रिया का आधार प्रतीत होती है जिसे उसने इस मामले में अपना चुना। तब उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि सिटी सिविल कोर्ट के समक्ष वादी पक्ष द्वारा इस आशय का कोई सबूत नहीं दिया गया था कि आदेश धोखाधड़ी से या संपार्श्विक उद्देश्य के लिए पारित किया गया था। यह तथ्य जीवंत था कि ऐसे मामले में किसी पक्ष को अपीलीय चरण में नए साक्ष्य पेश करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और लैटर पेटेंट अपील के चरण में तो बिल्कुल भी नहीं। तब यह देखा गया:

"यदि मामला इस प्रकार शांत हो गया होता तो संशोधन आवेदन के अलावा मामला बहुत सरल होता। हालांकि हमें ऐसा लगता है कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस मामले का संतोषजनक ढंग से निपटारा किया जाना संभव नहीं है। रिकॉर्ड पर कुछ दस्तावेज हैं जिनका अगर स्पष्टीकरण नहीं हो तो बड़े पैमाने पर वादी के तर्क का अस्पष्ट समर्थन करते हैं, कि प्रतिवादी 2, 3 और 4 ने धोखाधड़ी से आदेश प्राप्त किया और यह भी कि आदेश दुर्भावनापूर्ण था।"

यदि उच्च न्यायालय, ये टिप्पणियाँ करते समय, आदेश XLI नियम 27 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का उल्लेख किया था तो खण्ड(बी) उपधारा (1) नियम 27 के अंतर्गत अनिवार्य प्रावधानों की अनदेखी नहीं

करनी चाहिए थी। निसन्देह धारा 27 के तहत उच्च न्यायालय के पास एक दस्तावेज पेश करने और एक गवाह की जांच करने की अनुमति देने की शक्ति है। लेकिन उच्च न्यायालय की आवश्यकता उन मामलों तक ही सीमित होनी चाहिए जहां उसे निर्णय सुनाने में सक्षम बनाने के लिए ऐसे साक्ष्य प्राप्त करना आवश्यक लगे। यह प्रावधान उच्च न्यायालय को अपीलीय चरण में नए साक्ष्य पेश होने देने का अधिकार नहीं देता है, जहां ऐसे साक्ष्य के बिना भी वह किसी मामले में फैसला सुना सकता है। यह अपीलीय अदालत को केवल एक विशेष तरीके से निर्णय सुनाने के उद्देश्य से नए साक्ष्य पेश होने देने का अधिकार नहीं देता है। दूसरे शब्दों में, साक्ष्य में कमी को दूर करने के लिए ही अपीलीय अदालत को अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने का अधिकार है। हाई कोर्ट का यह मत नहीं है कि इस मामले में ऐसी कोई कमी है। दूसरी ओर, इसमें यह कहा गया है कि रिकॉर्ड पर कुछ दस्तावेजी साक्ष्य धोखाधड़ी और दुर्भावना के बारे में वादी के तर्क का "बड़े पैमाने पर" समर्थन करती हैं। हम फिलहाल इन दस्तावेजों से निपटेंगे लेकिन उससे पहले हमें यह इंगित करना होगा कि नियम 27 उप-धारा(1) खण्ड(बी) में निर्दिष्ट आधारों को छोड़कर पहले से ही रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य को जोड़ने के लिए प्रावधानों का उपयोग नहीं किया जा सकता है। यदि रिकॉर्ड पर दस्तावेज धोखाधड़ी के मुद्दे पर



प्रासंगिक हैं तो अदालत उन पर विचार करने और मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ सकती है। उच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ कि कुछ दस्तावेज़ वादी के धोखाधड़ी के तर्क का समर्थन करेंगे जब तक कि उन्हें समझाया नहीं जाएगा, यह दिखाएगा कि इसके अनुसार वे धोखाधड़ी का प्रथम दृष्टया सबूत प्रस्तुत करते हैं। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रतिवादी या उनमें से कोई भी दस्तावेज़ों को समझाने का अवसर देना चाहता था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल प्रतिवादियों को दस्तावेज़ों को समझाने का अवसर प्रदान करने के सीमित उद्देश्य के लिए नहीं था कि उच्च न्यायालय ने मामले को सिटी सिविल कोर्ट में भेज दिया। क्योंकि, अपने निर्णय के अंतिम भाग में उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिये हैं:

"परिणामस्वरूप, हम निर्णय में हमारे द्वारा निर्देशित अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने और संशोधन पर साक्ष्य की अनुमति देने के लिए मामले को सिटी सिविल कोर्ट में भेजते हैं। हम निर्देश देते हैं कि प्रतिवादी आज से तीन सप्ताह के भीतर अपना लिखित बयान दाखिल करें या संशोधन के जवाब में जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। उसके बाद एक सप्ताह के भीतर प्रकटीकरण और निरीक्षण हो और इस औपचारिकता के समाप्त होने के बाद, दुर्भावना और पक्षों के बीच संशोधित दलीलों पर उठने वाले मुद्दे-"

पर साक्ष्य लेने के लिए मामले को अंतिम सुनवाई के लिए बोर्ड में रखा जाएगा.."

इससे यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि उच्च न्यायालय ने वास्तव में जो आदेश दिया है वह नए सिरे से सुनवाई का आदेश देना है। आदेश XLI नियम 27 के तहत ऐसी प्रक्रिया अनुमान्य नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय ने बिल्कुल स्पष्ट रूप से आदेश XLI नियम 25 के तहत कार्यवाही नहीं की है, क्योंकि वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है कि शहरी दीवानी न्यायालय ने किसी विवादक को तय करने या विचार करने या तथ्य के प्रश्न को निर्धारित करने से चूक कर दी थी जो किसी मुकदमे के सही निर्णय के लिए आवश्यक था। क्योंकि, उच्च न्यायालय ने यह दर्शित नहीं किया है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा किस मुद्दे पर सुनवाई नहीं की गई थी। यदि उच्च न्यायालय का मतलब यह था कि आवश्यक विवादक ट्रायल कोर्ट द्वारा नहीं उठाया गया था, हालांकि इस तरह के विवादक को दलीलों के आलोक में लिया गया था, तो उच्च न्यायालय को इस नियम के तहत अतिरिक्त विवादक को तैयार करने और फिर इसे सुनवाई के लिए शहरी दीवानी न्यायालय में भेजने की आवश्यकता थी। अंत में, यह ऐसा मामला नहीं है जिसका निर्णय ट्रायल कोर्ट ने किसी

प्रारंभिक बिंदु पर किया था और इसलिए, नियम 23 के तहत सामान्य रिमांड जैसे नियम के तहत आदेश दिया जाना स्वीकार्य नहीं है।

वादी के धोखाधड़ी और दुर्भावनापूर्ण आरोपों के समर्थन में उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में जिन एकमात्र दस्तावेजों का उल्लेख किया है, वह पत्र, दिनांक 3 सितंबर, 1959 जिसे सिटी इंजीनियर ने किरायेदारों के संघ को लिखा था और पत्र, दिनांक 11 सितंबर, 1959 जिसे आयुक्त ने सुधार समिति को लिखा था। इन पत्रों में से पहले में सिटी इंजीनियर ने कथन किया था कि मकान मालिक मानक किराए पर देने के उद्देश्य से एकल कमरे के मकानों वाली एक इमारत बनाने के लिए सहमत हुए थे और मकान मालिक जिम्मेदारी ले रहे थे वास्तविक रूप से रहने वाले निवासियों के लिए करेंगे जिसमें वैकल्पिक आवास प्रदान करने की जिम्मेदारी ले रहे थे । निवासियों को अस्थायी रूप से अन्य परिसरों में स्थानांतरित करेंगे या सुविधाजनक पाए जाने पर विध्वंस और निर्माण के चरणबद्ध कार्यक्रम की व्यवस्था की जाएगी । यह पत्र धोखाधड़ी या दुर्भावना का कोई सबूत कैसे दे सकता है, इसकी सराहना करना कठिन है। हमारे सामने यह विवादित नहीं है कि जमींदारों ने कुर्ला में कुछ चॉल का निर्माण किया था और उन्होंने धोबी चॉल के किरायेदारों को कुर्ला चॉल में अस्थायी रूप से रहने की पेशकश की थी। यह भी विवादित नहीं था कि मकान

मालिक विध्वंस कार्य समाप्त होने के बाद, नई इमारतों के निर्माण के लिए सहमत हुए थे, जिसमें वर्तमान किरायेदारों को मानक किराए पर आवास प्रदान किया जाएगा। उच्च न्यायालय द्वारा अपने फैसले में उद्धृत 11 सितंबर, 1959 के पत्र के पैराग्राफ 3 में उल्लेख किया गया है कि किरायेदारों से इस आशय का एक अभ्यावेदन प्राप्त हुआ था कि मकान मालिक को किरायेदारों को कूर्ला चॉलों में जाने के लिए कहने के बजाय निकासी क्षेत्र के पास एक नई संरचना का निर्माण करना चाहिए। लेकिन उनकी मांग को उचित नहीं माना जा सकता। मकान मालिकों के पास पड़ोस में कोई जमीन नहीं दिखाई गई है। जिस पत्र-व्यवहार के माध्यम से श्री सीतलवाड ने हमसे बात की, उससे पता चलता है कि कोलाबा में भूमि के मूल्य बहुत अधिक हैं और रुपये 250 और रु. 275 प्रति वर्ग फुट के बीच हैं और जमींदारों से इस उद्देश्य के लिए जमीन खरीदने की यथोचित अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इसके अलावा, यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रासंगिक समय में धोबी चॉल के पड़ोस में कोई खाली स्थल भवन हेतु उपलब्ध था।

उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि योजना को अंततः निगम द्वारा अनुमोदित किए जाने, राज्य सरकार द्वारा पुष्टि किए जाने और सिटी सिविल कोर्ट द्वारा दिए गए अंतिम आदेश लागू होने के बाद ही सिटी

इंजीनियर ने किरायेदार एसोसिएशन को लिखा था कि मकान मालिक द्वारा कोई शपथ पत्र नहीं दिया गया। उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से 1 अप्रैल 1960 को सिटी इंजीनियर द्वारा किरायेदार ए एसोसिएशन को भेजे गए पत्र को ध्यान में रखा था, जिसे पेपर बुक में आइटम नंबर 38 के रूप में वर्णित किया गया है। उस पत्र में इस प्रकार लिखा है "सज्जनों, संदर्भ: आपका पत्र नंबर 0 दिनांक 19 फरवरी, 1960, उपर्युक्त संपत्ति के मकान मालिक ने उनमें से एक भूखंड अर्थात् प्लॉट संख्या 7 पर एक इमारत का निर्माण करके प्रामाणिक आवासीय किरायेदारों को मानक किराए पर वैकल्पिक आवास प्रदान करने की जिम्मेदारी ली है। उक्त इमारत के निर्माण के लिए स्थान उपलब्ध कराने का सवाल, या तो किरायेदारों द्वारा अस्थायी रूप से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होने या मकान मालिक द्वारा विध्वंस और निर्माण के चरणबद्ध कार्यक्रम की व्यवस्था करने से है, यह मकान मालिक और किरायेदार के मध्य का एक ऐसा मामला है जिसे पारस्परिक रूप से व्यवस्थित किया जाना चाहिए। जैसा कि आपने संकेत दिया है, नगर पालिका दोनों पक्षों के बीच ऐसी किसी भी व्यवस्था पर पहुंचने में मदद करेगी, नगर पालिका ने चॉल के विध्वंस के किसी भी चरणबद्ध कार्यक्रम के लिए मकान मालिक से कोई वचन पत्र प्राप्त नहीं

किया है। निकासी आदेश लागू होने के बाद मकान मालिक को पालना में चॉल को ध्वस्त करना होगा।

चूंकि उपरोक्त संपत्ति पर पर्याप्त खुली जगह उपलब्ध नहीं है, इसलिए उसी स्थान पर किरायेदारों के लिए अस्थायी आवास प्रदान करना संभव नहीं लगता है। यदि किरायेदार उस स्थान से स्थानांतरित होने की अपनी व्यवस्था करने की स्थिति में नहीं हैं, तो उन्हें प्रस्तावित भवन के शीघ्र निर्माण की सुविधा के लिए अस्थायी रूप से कुर्ला में मकान मालिक द्वारा प्रस्तावित किरायेदारों (एसआईसी) के पास स्थानांतरित हो जाना चाहिए।

भवदीय,

एसडी/-

यह पत्र, यह दिखाने के बजाय कि निगम या मकान मालिक किरायेदारों को वैकल्पिक आवास प्रदान करने के आश्वासन से पीछे हट गए थे, इस तथ्य की पुष्टि करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नगरपालिका द्वारा जमींदारों से इस आशय का कोई शपथ पत्र नहीं लिया गया था कि चॉलों को ध्वस्त करने के चरणबद्ध कार्यक्रम का पालन किया जाएगा। सिटी इंजीनियर ने इंगित किया कि यह एक ओर मकान मालिकों और दूसरी ओर किरायेदारों के बीच बातचीत का मामला था। किरायेदारों के आवास के लिए अस्थायी रूप से वैकल्पिक एस.यू.पी.सीआई/65-10 व्यवस्था करने के

बाद स्त्रे से निगम या मकान मालिकों पर और कुछ करने की कोई जिम्मेदारी नहीं थी। हालाँकि, उच्च न्यायालय का भिन्न मत था और कहा: "हालाँकि दुर्भावना या धोखाधड़ी के सवाल पर कोई सबूत नहीं दिया गया है, लेकिन प्रथम दृष्टया ऐसा निष्कर्ष निकलता है और बिना किसी आंतरिक साक्ष्य के उक्त सवाल पर फैसला करना उचित नहीं है।" यह तथ्य स्वयं को दोहराना होगा कि इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने या अतिरिक्त साक्ष्य लिए जाने का निर्देश देने की कोई शक्ति नहीं थी।

वादी की ओर से पेश हुए श्री श्रॉफ ने हमें वास्तुकारों की दो रिपोर्टों का हवाला दिया है जिसमें वास्तुकारों ने कहा है कि इमारतों की मरम्मत पर 2 लाख रुपये खर्च होंगे जबकि नए भवनों की लागत 3 लाख रुपये होगी और इसलिए, मकान मालिकों के लिए सबसे अच्छी बात यह थी कि वे निकासी आदेश के लिए निगम से संपर्क करें ताकि वे अंततः साइट पर नई इमारतों का निर्माण कर सकें। विद्वान वकील के अनुसार यह परिस्थिति, इस तथ्य के साथ ली जाए कि मकान मालिकों और कोलाबा लैंड मिल कंपनी लिमिटेड के मालिकों द्वारा मरम्मत करने के लिए निगम के नोटिस का पालन करने से जानबूझकर परहेज किया गया था, मकान मालिक और निगम के बीच मिलीभगत को दर्शाता है और इसलिए, यह

नहीं कहा जा सकता कि पैराग्राफ 8 ए में निर्धारित धोखाधड़ी की दलील के समर्थन में रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी। इस तथ्य के अलावा कि उच्च न्यायालय ने इस सामग्री का उल्लेख नहीं किया है, यह देखना पर्याप्त है कि यद्यपि मकान मालिकों ने जानबूझकर इमारतों को मानव कब्जे के लिए अयोग्य बना दिया है या उन पर रहने वाले किरायेदारों की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर दिया है, लेकिन ये मामले मकान मालिकों और निगम के बीच किसी मिलीभगत का संकेत नहीं देते।

इसलिए, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय ने वादपत्र में संशोधन की अनुमति देने और मुकदमे को वस्तुतः पुनः सुनवाई के लिए अन्वीक्षा न्यायालय में भेजने में गलती की थी। हालाँकि, उच्च न्यायालय इस आदेश से संतुष्ट नहीं हुआ, बल्कि आगे निर्देश दिया कि "हम विशेष रूप से चाहते हैं कि आयुक्त और सिटी इंजीनियर और प्रतिवादियों से इस प्रश्न पर पूछताछ की जाए"- यह प्रश्न किरायेदारों को दिए गए आश्वासन के उल्लंघन का है। इस निर्देश को बनाने में उच्च न्यायालय ने एक प्रशंसनीय उद्देश्य से कदम उठाया होगा, लेकिन हमारा मानना है कि उसे उन सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए था जो कानून उसके समक्ष किसी मामले से निपटने में न्यायालय की शक्तियों पर लागू करता है। जिस प्रकार किसी पक्ष को किसी विशेष प्रकार की दलील देने या अपनी दलील में संशोधन



करने के लिए मजबूर करना अदालत के लिए खुला नहीं है, उसी तरह किसी विशेष गवाह की जांच करने के लिए किसी पक्ष को बाध्य करना उसकी क्षमता से परे है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय ने जो कहा है वह अनुदेशात्मक आदेश नहीं है लेकिन पक्षकार ऐसा कर सकते हैं संभवतः इसे अन्यथा उपचारित करने का जोखिम न लें। हालाँकि, यह अदालत का कर्तव्य है कि वह न केवल न्याय करे बल्कि यह सुनिश्चित करे कि न्याय हो, उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसे केवल कानून के अनुसार कार्य करना चाहिए, अन्यथा नहीं।

फिर सवाल यह है कि क्या हमें धाराओं 354 और धारा 354 आरए की शक्तियों के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजना चाहिए। यह ध्यान रखा जाएगा कि उच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया है। हम आम तौर पर मुद्दे को तय करने के लिए मामले को उच्च न्यायालय में वापस भेज देते। लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि निगम द्वारा निकासी आदेश बहुत पहले 7 मई, 1959 को किया गया था और राज्य सरकार द्वारा 23 जनवरी, 1960 को इसकी पुष्टि की गई थी और अपील को उच्च न्यायालय में काम की भीड़ के कारण, उचित समय के भीतर निपटाए नहीं जाने की संभावना भी थी।

हमने स्वयं ने इस बिंदु पर भी पक्षों को सुनना और निर्णय लेना उचित समझा।

श्री श्रॉफ का संक्षेप में तर्क है कि वादी और जो लोग इमारतों पर कब्जे में हैं इस तथ्य के कारण कि वे किरायेदार हैं उनका उनमें हित है। निकासी आदेश के परिणामस्वरूप वे अपने संबंधित आवासों से बेदखल होने के लिए उत्तरदायी हैं। इसलिए, उनका तर्क है, निगम उन्हें इसके खिलाफ कारण बताने का अवसर दिए बिना ऐसा आदेश नहीं दे सकता। उनके अनुसार, धाराएं 354आर और 354आरए के प्रावधान एक निकासी आदेश पारित होने से पहले किरायेदारों को दिए जाने वाले अवसर पर विचार नहीं करते हैं और इसलिए, प्रावधान अधिकारातीत हैं। इसके अलावा, उनके अनुसार, उनका मुकदमा उपबन्ध के प्रावधानों के आधार पर वर्जित नहीं है क्योंकि धारा (2) अनुसूची जीजी के तहत उन्हें निकासी आदेश से "व्यथित व्यक्ति" नहीं कहा जा सकता है।

इसलिए, उन्हें उस आदेश के खिलाफ सिटी सिविल कोर्ट, बॉम्बे के न्यायाधीश के समक्ष अपील करने का अधिकार नहीं था। वह यह भी इंगित करते हैं कि बॉम्बे रेंट्स होटल और लॉजिंग हाउस रेंट्स कंट्रोल एक्ट, 1947 ने बॉम्बे शहर जैसे क्षेत्र में स्थित एक घर के मकान मालिक पर एक किरायेदार को बेदखल करने के अधिकार पर प्रतिबंध लगा दिया है, द्वारा

धारा 12 जिसमें कहा गया है कि एक किरायेदार को आम तौर पर तब तक बेदखल नहीं किया जाएगा जब तक कि वह मूल समझौते के तहत मानक किराया और अनुमत वृद्धि का भुगतान करता है, चाहे उसकी किरायेदारी की अवधि कुछ भी हो। इस प्रावधान द्वारा किरायेदार को प्रदत्त अधिकार मकान मालिक के संपत्ति रखने के अधिकार से स्वतंत्र रूप से मौजूद है और निगम द्वारा किरायेदार की पीठ पीछे निकासी आदेश देकर इस अधिकार में हस्तक्षेप या उसका हनन नहीं किया जा सकता है। उनका मत है कि खण्ड (एचएच) उप-धारा (1) एस. 13 के तहत मकान मालिक किरायेदार से परिसर का कब्जा इस आधार पर वापस पाने का हकदार होगा कि स्थानीय प्राधिकारी या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा इसकी आवश्यकता है। लेकिन, उनका तर्क है, यह प्रावधान अधिनियम द्वारा किरायेदार को एक प्रस्तावित निकासी योजना के खिलाफ कारण बताने का अवसर प्रदान करने का एक और कारण प्रस्तुत करता है जो उसे प्रभावित करता है या प्रभावित करने की संभावना है क्योंकि वह मकान मालिक को किसी कार्यवाही में निकासी आदेश से बाध्य होगा। जो कि अधिनियम की धारा 13(1) के तहत मकान मालिक द्वारा उस आदेश के आधार पर ध्वस्त परिसर का कब्जा वापस प्राप्त करने हकदार माना गया है।

हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक किरायेदार के पास संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम और बॉम्ब रेंट , होटल और लॉजिंग हाउस रेंट्स कंट्रोल एक्ट, 1947 की धारा 12 दोनों के तहत स्वामित्व वाले परिसर में हित है, जो कि उसमें होने वाली अभिव्यक्ति संपत्ति संविधान के अनुच्छेद 19 के उपखण्ड (एफ) व खण्ड (1) के अंतर्गत आता है। इस उपखण्ड के तहत एक किरायेदार को जो अधिकार प्राप्त है, वह संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड 5 के अधीन है जो, अन्य बातों के अलावा, यह प्रावधान करता है कि उप-खंड द्वारा मान्यता प्राप्त अधिकार किसी भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करता है, जहां तक आम जनता के हित में उक्त उपखण्डों द्वारा प्रदत्त अधिकारों को राज्य को किसी भी कानून को लागू करने पर उचित प्रतिबंध लगाने या बनाने से रोकता है। बॉम्बे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन एक्ट निश्चित रूप से संविधान के प्रारंभ की तारीख पर एक मौजूदा कानून था, लेकिन 1954 बॉम्बे अधिनियम 34 की धारा 18 द्वारा 354आर से 354आरए को पहले के प्रावधानों के स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया था। इसलिए हमें यह पता लगाना है कि क्या कानून जैसा कि यह है, पट्टान्तरित परिसर को रखने के किरायेदार के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाता है । इस प्रयोजन के लिए हमें अधिनियम के उन

प्रावधानों की जांच करनी होगी जो निगम को निकासी आदेश देने का अधिकार देते हैं।

धारा 354आर की उप-धारा (1) में प्रावधान है कि यदि आयुक्त को अन्य बातों के अलावा यह प्रतीत होगा, (ए) कि किसी भी क्षेत्र में आवासीय भवन जीर्ण-शीर्ण होने के कारण मानव निवास के लिए अनुपयुक्त हैं या समान कारण से क्षेत्र के निवासियों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक या हानिकारक हैं और (बी) किसी सुधार योजना के बिना क्षेत्र की सभी इमारतों को ध्वस्त करके क्षेत्र की स्थितियों को प्रभावी ढंग से ठीक किया जा सकता है, आयुक्त क्षेत्र को परिभाषित कर सकते हैं और निगम की मंजूरी के लिए एक निकासी योजना मसौदा प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके बाद निगम यह घोषणा करते हुए एक प्रस्ताव पारित कर सकता है कि उसके द्वारा परिभाषित और अनुमोदित क्षेत्र निकासी क्षेत्र है। उप-धारा (2) में अन्य बातों के अलावा प्रावधान है कि निगम को ऐसे व्यक्तियों की संख्या का पता लगाना चाहिए जिनके ऐसे क्षेत्र में बेघर होने की संभावना है और उसके बाद ऐसे यथासंभव उपाय करने चाहिए जो यह सुनिश्चित करने के लिए व्यावहारिक हों बेघर हुए लोगों को यथासंभव कम से कम कठिनाई हो। फिर राज्य सरकार को यह संकल्प अग्रेषित करना आवश्यक है।

उपधारा (4) इस प्रकार प्रदान करती है:

"जितनी जल्दी हो सके निगम द्वारा किसी क्षेत्र को निकासी क्षेत्र घोषित करने के बाद, आयुक्त, आवश्यक रूप से इस अधिनियम में इसके बाद निहित उचित प्रावधानों के अनुसार, निम्नलिखित में से एक या अन्य तरीको में से क्षेत्र की निकासी सुनिश्चित करने के लिए आगे बढ़ेगा, या आंशिक रूप से उन तरीकों में से एक में, और आंशिक रूप से उनमें से दूसरे में, यानी-

(ए) क्षेत्र में इमारतों को ध्वस्त करने का आदेश देकर; या

(बी) निगम की ओर से क्षेत्र में शामिल भूमि का अधिग्रहण करके और उस पर स्वयं द्वारा या अन्यथा इमारतों को ध्वस्त करेगा।"

धारा 354 आरए की उपधारा (1) के तहत निगम को पुष्टि के लिए राज्य सरकार को निकासी आदेश प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। उपधारा (4) इस प्रकार है: "राज्य सरकार को आदेश प्रस्तुत करने से पहले, आयुक्त-आवश्यक रूप से-

(ए) आधिकारिक राजपत्र में और ग्रेटर बॉम्बे के भीतर प्रसारित तीन या अधिक समाचार पत्रों में एक साथ प्रकाशित करें, एक नोटिस जिसमें इस तरह के निकासी आदेश के तथ्य को बताया गया हो और उसमें

शामिल क्षेत्र का वर्णन किया गया हो और उस स्थान का नाम बताया गया हो जहां आदेश की एक प्रति और उसमें उल्लिखित योजना को सभी उचित घंटों में देखा जा सकता हो; और

(बी) प्रत्येक व्यक्ति को, जिसका नाम आयुक्त की मूल्यांकन पुस्तिका में दिखाई देता है, जो इस अधिनियम के तहत लगाए जाने वाले संपत्ति कर के भुगतान के लिए प्राथमिक रूप से उत्तरदायी माना गया हो, उस क्षेत्र में शामिल किसी भी इमारत पर जहां तक निकासी आदेश संबंधित है और, जहां तक यह उचित रूप से व्यावहारिक है ऐसे व्यक्तियों का पता लगाने के लिए, प्रत्येक गिरवीदार पर, निकासी आदेश के प्रभाव को बताने वाला एक नोटिस और यह कि पुष्टि के लिए राज्य सरकार को प्रस्तुत किया जाने वाला है, और उस निर्दिष्ट समय के भीतर और उस तरीके से जिसमें आयुक्त को आपत्तियां दी जा सकती हैं।

उप-धारा (5) के तहत आयुक्त द्वारा प्राप्त आपत्तियां, यदि कोई हों, सुधार समिति को प्रस्तुत की जानी हैं और वह समिति उप-धारा(6) के तहत हकदार है कि आदेश के संबंध में ऐसे संशोधन करना जो वह उचित समझे। मामला फिर निगम और उसके बाद राज्य सरकार के पास जाना है। उप-धारा (7) में प्रावधान है कि अधिनियम की अनुसूची जीजी के प्रावधान निकासी आदेश की वैधता और संचालन की तारीख के संबंध में

प्रभावी होंगे। हमें धारा 354RA के बाकी प्रावधानों से कोई सरोकार नहीं है, अनुसूची जीजी के खंड (1) में प्रावधान है कि जैसे ही राज्य सरकार द्वारा निकासी आदेश की पुष्टि की जाती है, आयुक्त को धारा 354 आरए की उप-धारा (4) के तहत एक नोटिस की तरह ही प्रकाशित करना होगा। एक नोटिस जिसमें कहा गया है कि आदेश की पुष्टि कर दी गई है। खंड (2) महत्वपूर्ण है और हम इसे पुनः पेश करेंगे। यह इस प्रकार चलता है:

"उपरोक्त आदेश से या राज्य सरकार द्वारा पुनर्विकास योजना या नई योजना की मंजूरी से व्यथित कोई भी व्यक्ति, आदेश की पुष्टि, या योजना के अनुमोदन की सूचना के प्रकाशन के छह सप्ताह के भीतर, शहरी दीवानी न्यायालय, बॉम्बे के न्यायाधीश के समक्ष अपील करें, जिसका निर्णय अंतिम होगा।"

निगम की ओर से श्री सीतलवाड द्वारा और मकान मालिकों की ओर से सॉलिसिटर-जनरल द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक किरायेदार न केवल धारा 354आरए की उपधारा (4) के खण्ड (बी) के तहत निकासी आदेश बनाने पर आपत्ति उठाने का हकदार है अपितु अनुसूची जीजी के खण्ड (2) के तहत अपील में भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि इनमें से किसी भी प्रावधान में किरायेदारों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन तथ्य यह है कि धारा 354आरए की उपधारा (4) के खण्ड (ए) के



तहत निकासी आदेश के प्रकाशन की आवश्यकता है, यह अनुमान लगाना उचित होगा कि ऐसा करने का उद्देश्य उन व्यक्तियों के सम्बंध में आपतियां आमंत्रित करना है जो आदेश से प्रभावित होंगे। चूंकि किरायेदार इससे प्रभावित होंगे, इसलिए वे इस वर्ग में आते हैं। यह सत्य है कि उस प्रावधान का खण्ड (बी) में केवल मुख्य रूप से संपत्ति कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों और संपत्ति के गिरवी रखने वालों पर नोटिस की वास्तविक सेवा पर विचार किया गया है, लेकिन दूसरों पर नहीं और यह भी कहा गया है कि आयुक्त के आदेश पर आपत्ति करने का समय और तरीका भी निर्दिष्ट किया जाना चाहिए लेकिन इसमें किरायेदारों के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है। लेकिन अगर इसके कारण हम यह मानते हैं कि यह किरायेदार या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रस्तावित आदेश पर आपत्ति दर्ज करना खुला नहीं होगा जो आदेश से प्रभावित होगा, तो नोटिस के प्रकाशन को व्यावहारिक रूप से निरर्थक बना देगा। निस्संदेह किरायेदार ऐसे व्यक्ति हैं जो इस आदेश से प्रभावित होंगे। धारा 354आर की उपधारा (2) उन व्यक्तियों के संबंध में निगम पर कुछ कर्तव्य ब्य डालत है , जिनके निकासी आदेश के परिणामस्वरूप बेदखल होने की संभावना है। इसलिए, यह अनुमान लगाना वैध होगा कि निगम द्वारा किरायेदारों को उनके प्रति अपने कर्तव्यों के प्रदर्शन को सुनिश्चित

करने के लिए एक समान अधिकार प्रदान किया गया था। यह अधिकार संपत्ति में उनके हित के अतिरिक्त होगा। इसलिए, उन्हें ऐसे व्यक्ति माना जाना चाहिए जो प्रस्तावित आदेश पर आपत्ति दर्ज करने के हकदार हैं। हालाँकि, श्री श्रॉफ का तर्क है कि 354RA की उपधारा (4) के खण्ड (बी) केवल उस खंड में निर्दिष्ट व्यक्तियों तक आपत्ति दर्ज करने का अधिकार सीमित करता है और खण्ड की भाषा में कुछ भी नहीं है। (ए) जिससे अन्य व्यक्तियों के पक्ष में समान अधिकार निकाला जा सके। हमें ऐसा लगता है कि उपधारा (4) के दोनों खण्ड(ए) और (बी) के प्रावधानों को पूर्ण प्रभाव देने के लिए खण्ड (बी) उपधारा (4) के अंत में आने वाले शब्द "और उस समय और तरीके को निर्दिष्ट करना जिसके भीतर आयुक्त को आपत्तियां की जा सकती हैं" को न केवल खण्ड (बी) के बाकी हिस्सों को नियंत्रित करने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए बल्कि खण्ड (ए) को भी। यदि हमने ऐसा किया तो हम धारा को दोबारा नहीं लिखेंगे क्योंकि यदि विधायिका का उद्देश्य केवल उपधारा (5) के खण्ड 4(बी) में निर्दिष्ट व्यक्तियों को आपत्तियां दर्ज करने का अधिकार देना था तो यह नहीं कहती है कि आयुक्त उप-धारा (4) के तहत प्राप्त आपत्तियों को सुधार समिति को प्रस्तुत करेंगे, लेकिन इसके बजाय कहा जाता "उप-धारा (4) के खण्ड (बी) के तहत प्राप्त आपत्तियाँ, किरायेदार को आपत्ति दर्ज करने का अधिकार

प्रदान किया गया है, जो अनुच्छेद जीजी के खण्ड(2) के प्रावधानों द्वारा इसे और स्पष्ट किया गया है। जिसे हमने पहले पुनः प्रस्तुत किया है। अभिव्यक्ति "कोई भी व्यथित व्यक्ति" न केवल एक किरायेदार को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक है, बल्कि एक इमारत के रहने वाले को भी शामिल करता है, जिसके कि निकासी आदेश के तहत की गई कार्रवाई के परिणामस्वरूप बेदखल होने की संभावना है। अभिव्यक्ति "व्यथित व्यक्ति" को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है और इसलिए, हम इसका प्राकृतिक अर्थ देने के हकदार हैं। प्राकृतिक अर्थ में निश्चित रूप से वह व्यक्ति शामिल होगा जिसका हित किसी भी तरह से आदेश से प्रभावित होता है। इसमें हमें जेम्स एल.जे., की टिप्पणियों का समर्थन मिलता है, जो एक्स पार्टी साइडबॉटम, में इंगित की गई हैं, इन री साइडबॉटम. (1<sup>1</sup>) शरीफुद्दीन बनाम आरपी सिंह में इवेक्यू संपत्ति प्रशासन अधिनियम, 1950 की धारा 24(1) में होने वाली एक समान अभिव्यक्ति विवेचन का विषय थी। (1) वहां के विद्वान न्यायाधीशों ने माना कि ये शब्द सबसे व्यापक आयाम के हैं और निष्क्रांत सम्पत्तियों के सहायक संरक्षक को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं।

---

1 (1880) 14 सी.डी. 458 बजे पी. 465.

चूँकि अनुसूची जीजी के खण्ड(2<sup>2</sup>) द्वारा प्रदत्त अधिकार एक पीड़ित व्यक्ति को क्लीयरेंस आदेश के खिलाफ अपील करने का अधिकार है, जैसा कि सरकार द्वारा पुष्टि की गई है, शहरी दीवानी न्यायालय के एक न्यायाधीश के समक्ष, श्री श्रॉफ का तर्क है कि उसमें शब्द "पीड़ित व्यक्ति" का तात्पर्य आवश्यक रूप से उस व्यक्ति से है जो आदेश का पक्षकार था। यह सच है कि आम तौर पर अपील का अधिकार उस व्यक्ति को दिया जाता है जो कार्यवाही में एक पक्ष है, लेकिन ऐसा केवल तभी होगा जब कार्यवाही कुछ पक्षों के बीच हो। धारा 354 आर द्वारा विचारित प्रकृति की कार्यवाही, स्पष्ट रूप से, विपरीत पक्षों पर आधारित पक्षों के बीच की कार्यवाही नहीं है। निगम द्वारा कुछ शक्तियों के प्रयोग पर विचार किया जा रहा है जो विभिन्न व्यक्तियों या एक वर्ग या व्यक्तियों के वर्गों के हितों को प्रभावित करेगा। और अनुसूची जीजी के खण्ड (2) उनमें से किसी को भी अपील करने का अधिकार देती है यदि उसका कानूनी अधिकार या हित निगम की शक्तियों के अनुसरण में की गई किसी भी कार्रवाई से प्रभावित होता है।

**इसलिए, धारा 354 आरए और अनुसूची जीजी के उचित विवेचन पर, यह माना जाना चाहिए कि वे किरायेदारों को निकासी आदेश पर**

---

2 (1956)आईएलआर 35 पैट 1920.

आपत्ति करने का अवसर प्रदान करते हैं। इससे यह पता चलता है कि धाराएँ 354 आर और 354 आरए के तहत किरायेदारों के संपत्ति रखने के अधिकार पर प्रतिबंध अनुचित नहीं हैं और ये प्रावधान वैध हैं। श्री श्रॉफ इस बात से सहमत हैं कि यदि प्रतिबंध उचित हैं तो उनका यह तर्क विफल होना चाहिए कि ये प्रावधान असंवैधानिक हैं।

इस विचार के बाद कि ये प्रावधान वैध हैं, इसका आगे यह मानना चाहिए कि वादी के लिए सिविल न्यायालय के न्यायाधीश के समक्ष अपील करने का अधिकार खुला है। सरकार द्वारा इसकी पुष्टि और अनुच्छेद जीजी के खण्ड (2) में निर्धारित तरीके से इसके प्रकाशन के बाद निकासी आदेश को अंतिम रूप दिया जाता है। जो पीडित व्यक्ति द्वारा अनुच्छेद जीजी के खण्ड (2) के तहत पेश की गई अपील के परिणाम के अधीन है। यदि ऐसी कोई अपील नहीं की जाती है या यदि ऐसी अपील दायर की जाती है और खारिज कर दी जाती है, वाद द्वारा कोई उपाय किरायेदार जैसे व्यक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है जो दावा करता है कि वह पीडित है। सिटी सिविल कोर्ट के विद्वान न्यायाधीश से सहमत होते हुए हम मानते हैं कि वादी का मुकदमा चलने योग्य नहीं है।

तदनुसार, हम उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करते हैं और इस अपील को स्वीकार करते हैं। हालाँकि, हम लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

अपील स्वीकार ।

नोट:- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **शैलेश जडिया**, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होना और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।